13

महिला आन्दोलन
(Women's Movement)

स्त्री समाज पर हम जब विचार करना चाहते हैं तो अनेक प्रश्न खड़े हो जाते हैं। किस युग की स्त्री पर विचार करें? स्त्री की किस स्थिति पर विचार करें? किस समाज की स्त्री पर विचार करें? किस व्यवस्था में स्त्री की क्या दशा, स्थिति और भूमिका रही उस पर विचार करें या क्या स्त्री कभी स्वतंत्र भी रही है, उस पर विचार करें? ढेर सारे प्रश्न हमसे उत्तर माँगते हैं।

संसार के सभी देशों में कमोबेश रूप में स्त्री पुरुष की दास रही है। पुरुष की वैयक्तिक सम्पत्ति रही है। चाहे जिस रूप में जैसा चाहे वह उसका प्रयोग कर सकता है। स्त्री समाज की जड़ चेतना ने उसे शताब्दियों तक गुलाम की तरह जीवनयापन करने के लिये विवश किया। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं थी और थी भी तो उसे प्रकट नहीं कर सकती थी क्योंकि वह मालिक के अधीन थी। यहाँ तक कि उसकी देह भी उसकी नहीं थी। वह भी मालिक के इशारे पर खरीदी और वेची जाती थी। हमारी पूरी सामाजिक व्यवस्था स्त्री को निरीह, दयनीय रूप में गढ़ती आई है। बचपन से ही हमने लड़की के कान में यह मंत्र अथवा शब्द डाल दिये हैं कि लड़की परायी सम्पत्ति होती है, उसे तो दूसरे के घर जाना है। यहाँ पर फ्रांसीसी लेखिका **सीमोन द बोउआर** के शब्द कितने महत्त्वपूर्ण है **''औरत पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है।''** यह कथन कल भी सत्य था और आज भी है। इस पुरुष प्रधान समाज ने ही तो उसे शताब्दियों से ऐसा गढ़ा है।

पूरी की पूरी सामन्तवादी और पूंजीवादी व्यवस्था ने सभी स्त्रियों के साथ बेहद अन्याय किया है, उसके साथ जुल्म किये हैं। उसे ईश्वर द्वारा गढ़ी एक कृति माना ही नहीं है। ऐसा लगा कि ईश्वर ने केवल पुरुषों को ही जन्म दिया है। सम्पूर्ण समाज की चीजों पर उसका ही एक मात्र अधिकार है। प्रसिद्ध साहित्यकार **राजेन्द्र यादव** सामन्ती समाज का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं –

''कृषि आधारित सामंती व्यवस्था किसी भी तरह की 'मोबिलिटी' की अनुमति नहीं देती। वहाँ मालिक और श्रमिक दोनों स्थायी होते हैं जो जहाँ हैं वहीं रहकर उसे अपने धर्म यानी कर्त्तव्यों का पालन करना है...... इस ढांचे में स्त्री ही अपेक्षाकृत अधिक मोबाइल

Scanned with CamScanner

है। वह वस्तु की तरह अनेक समाजों, स्थानों, धर्मों और परिवारों में लाई, ले जाती
है - अक्सर ही स्वेच्छा से नहीं, मालिकों की हैसियत या शक्ति के हिसाब से..... यहाँ त
कि उनकी अपनी देह और जिन्दगी के फैसले भी मालिक ही लेते हैं। इसलिये अनुपयो
या बोझ होने पर आसानी से इनसे जान छुड़ाई जा सकती है,ये दोनों ही डिस्पोजेबिल व
हैं। स्वतंत्रता इन्हें सामन्ती व्यवस्था से बाहर जाकर ही मिल सकती है।[1]'' लेकिन यह
उतना ही सत्य है कि स्त्री का आरम्भिक युग में और विशेषतौर से मातृसत्तात्मक समा
में स्थिति सुदृढ़ थी। वह परिवार की मुखिया थी। नीलम चौहान के शोध ने प्रमाणित कि
है कि ''बाद में एक खास दौर में ही ऐसा हुआ जब स्त्री को सम्पत्ति के सवाल पर सामाजि
गतिविधियों से काटकर घर के अन्दर सीमित कर दिया गया।[2]''

स्त्री समाज की यातनायें, अत्याचार, दुखी, पीड़ित, जिन्दगी के विरोध में वे अन्
ही अन्दर सुलग रही थी। ज्वालामुखी एक दिन में फूटता और फटता नहीं। इसी प्रकार क
लगते हैं किसी आन्दोलन अथवा क्रांति, विद्रोह को जन्म लेने में। रामधारी सिंह दिनक
कहते हैं कि ''विद्रोह बगावत या क्रांति कोई ऐसी चीज नहीं होती जिसका विस्फोट अचान
होता हो। घाव फूटने से पहले बहुत काल तक पकता रहता है। विचार भी, चुनौती लेक
खड़े होने के पहले वर्षों तक अर्द्ध-जाग्रत अवस्था में फैले रहते हैं।[3]'' इसी सन्दर्भ में जे
फ्रीडमन का विचार है कि नारीवाद की परिभाषा नहीं की जा सकती है पर इसके लक्षणों
पर प्रकाश डाला जा सकता है। मुख्य तथ्य यह है कि समाज में नारी की निम्न स्थिति-
यह लैंगिक विभेद के कारण ही है। इसीलिये महिलाओं ने यह आवाज बुलन्द की है कि
उनके सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक व्यवस्था में बदलाव आना आवश्यक
है।[4] इस प्रकार के बदलाव की गूंज स्त्री आन्दोलन की पृष्ठिभूमि में सदैव उपस्थित रही है।
आरम्भ में नारी चेतना में वह चिन्गारी जो आन्दोलन के लिये होनी चाहिए थी उसका अभाव
था क्योंकि उसे तो चार दीवारियों में ही कैद कर रखा था। सामाजिक चेतना और शिक्षा
के अभाव में सैकड़ों वर्षों तक भारतीय महिला पुरुष और सामन्ती समाज की भोग की वस्तु
बनकर रह गयी और वह सामाजिक न्याय के लिये छटपटाती रही। क्यों नहीं स्त्री आन्दोलन
सशक्त रूप में आगे बढ़ा? इसकी ओर संकेत करते हुए **राजेन्द्र यादव** कटाक्ष करने में किसी
प्रकार का गुरेज़ नहीं करते हैं कि -

''जाहिर है दलितों और स्त्रियों की मुक्ति का सवाल राजनीतिक हिस्सेदारी या उससे भी पहले सामाजिक न्याय का प्रश्न है। सारी लड़ाई उस मर्दवादी वर्ण व्यवस्था के खिलाफ है जो इन दोनों वर्गों को कोई अधिकार नहीं देती।[5]''

---

1. राजेन्द्र यादव, सम्पादकीय, हंस, पृष्ठ 4, अगस्त, 2004.
2. नीलम चौहान, मुक्ति के स्वर, पृष्ठ 3.
3. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 102.
4. जे. फ्रीडमैन, फेमिनिज्मस, पृष्ठ 1.
5. राजेन्द्र यादव, सम्पादकीय, हंस, पृष्ठ 5.

Scanned with CamScanner

ए.आर. देसाई उन स्थितियों व परिस्थितियों की ओर ध्यान दिलाते हैं जिसने स्त्री आन्दोलन को प्रेरित किया क्योंकि शताब्दियों से वे दमन, अत्याचार और शोषण की शिकार थी। मध्ययुगीन भारत में तो स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय और शोचनीय थी। देसाई के शब्दों में,

"नए आर्थिक पर्यावरण के उद्भव, नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और चिन्तन शैलियों के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत में साधारण राष्ट्रीय और प्रजातांत्रिक जागरण हुआ, उसी की एक अभिव्यक्ति यह भी थी कि जिस मध्ययुगीन सामाजिक अधीनस्थता और प्रपीड़न से भारतीय नारी सदियों से त्रस्त थी, उससे उसकी मुक्ति के आन्दोलन शुरू हुए।[6]"

जी.एच. फोरबेस 19वीं शताब्दी के सुधार आन्दोलनों सुधारवादियों को स्त्री की स्थिति को लेकर काफी गहरी चिन्ता थी। उनका सर्व प्रथम प्रयास था कि समाज से सती प्रथा, शिशु हत्या और विधवा पुनर्विवाह निषेध को समाप्त किया जाय क्योंकि ये स्त्री की सामाजिक स्थिति के लिये हानिकारक हैं। बाद में इन्होंने महिलाओं को शिक्षित किया और उन्हें सामाजिक जीवन में भी प्रवेश कराया। 20 वीं सदी के आरम्भ में महिलाओं ने यह अनुभव किया कि उनका भारतीय स्तर पर एक महिला संगठन होना चाहिए जिसे महिलायें ही संचालित करें और जो महिलाओं की समस्याओं को उजागर करें।[7] लेकिन **जे. फ्रीडमैन** का विचार है कि स्त्री आन्दोलन ठीक किस समय आरम्भ हुआ यह बताना कठिन है क्योंकि इनके अनेक समूह, तरीके और संगठन रहे हैं। फिर भी इन आन्दोलनों के दो स्वरूप उभर कर आते हैं। एक है सुधारवादी और दूसरा स्त्री अधिकार और स्त्री आन्दोलन।[8]

आरम्भ में पुरुषों की सोच और मानसिकता का एक ऐसा फ्रेम बना हुआ था कि उसके आगे वे स्त्री के लिये सोचते ही नहीं थे। सुकरात से लेकर स्टुअर्ट मिल तक स्त्री के संबंध में पूर्वाग्रह ग्रसित थे। उनका विचार है कि दार्शनिक एवं बौद्धिक चिन्तन में स्त्रियों को इनसे दूर ही रखा जाना चाहिए क्योंकि स्त्रियों के स्वाभाव में अनेक कमजोरियां होती हैं। अरस्तू भी स्त्री को स्वाभावतः परिवार के कार्यों में उलझी बताते हैं। इसलिये समाज में उनकी निम्न स्थिति होती है। इस तरह प्राचीन दार्शनिक स्त्री को स्त्री समाज, अर्थात् परिवार तक ही उपयोगी बताकर छुटकारा प्राप्त कर लते हैं। लेकिन जान स्टुअर्ट मिल के विचार महिलाओं के पक्ष में हैं। वे कहते हैं, कि पुरुषों की तरह महिलाओं को भी मताधिकार, शिक्षा और रोजगार के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। लेकिन इन सबसे कहीं पूर्व गौतम बुद्ध ने जांत-पांत के बन्धन को समाप्त कर संघ की स्थापना की थी। इस संघ में जाति और जातिवाद का कोई स्थान नहीं था। बुद्ध ने सैकड़ों महिलाओं को बुद्ध धर्म में दीक्षित करके संघ में प्रवेश

---

6. ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 218.
7. जे.एच. फोरबेस, सोशल मूवमेन्ट इन इन्डिया, पृष्ठ 13.
8. जे. फ्रीडमैन, फेमिनिज्मस, पृष्ठ 191.

Scanned with CamScanner

दिया था। जाति के बन्धनों को तोड़ना। उसका खण्डन-मण्डन करना। इसलिये 500 ई. पूर्व में महिलाओं को संघ में लेना एक महानतम् घटना है। स्त्री समाज में चेतना की दृष्टि का यह बेजोड़ उदाहरण है। ऐसा मैं सोचता हूँ कि -

महिला आन्दोलन को अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. पुरुषों द्वारा महिला आन्दोलन
2. महिलाओं द्वारा आन्दोलन
3. स्त्री विमर्श और महिला आन्दोलन
4. अहम् मुद्दों पर आधारित आन्दोलन।

1. पुरुषों द्वारा महिला आन्दोलन
(Women's Movement Supported by Men)

यहाँ पर मैं मनुस्मृति की चर्चा अवश्य करना चाहूँगा जहाँ मनु ने भी स्त्री को वह स्वतंत्रता नहीं प्रदान की जिससे वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके और पुरुषों की तरह स्वच्छ वायु में साँस ले सके। अपने को पुरुषों की तरह स्वतंत्र अनुभव कर सके। मनु ने भी स्त्री को पुरुष के अधीन आयु के प्रत्येक सोपान में रखा है। मनु के स्त्री स्वभाव के विचारों का विश्लेषण करते हुए वी.एन. सिंह लिखते हैं -

> "वह स्त्रियों को इस प्रकार के कार्य देना चाहते हैं जो उनके स्वाभावानुकूल हों और वे सरलता से कर सकें। आपका विचार है कि गृहस्थी का कार्य स्त्रियाँ सरलता से कर सकती हैं। इसलिये वह गृहलक्ष्मी हैं। वह घर से बाहर की परिस्थितियों का सामना सरलता से नहीं कर सकती। इसलिये उसे बाहर स्वतंत्र होकर नहीं घूमना चाहिए। स्त्री-पुरुष की क्षमतायें भिन्न-भिन्न हैं और उसकी सीमायें भी।..... उसमें सन्तुलित मस्तिष्क का अभाव होता है।[9]"

मनुस्मृति की चर्चा करना इसलिये यहाँ पर आवश्यक था क्योंकि शास्त्रों के रचयिता पुरुषों ने भी स्त्री को दोयम दर्जे का माना। इसीलिये पुरुष प्रधान और पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री सदैव छली गयी है। प्रताड़ित की गयी है। घर की सीमाओं में निरक्षर होकर रह गयी। कुछ अपवादों को छोड़ दें। काल के चक्र में आन्दोलन के बीज समाहित होते हैं। एक आन्दोलन के बीज में सम्पूर्ण आन्दोलन की रूपरेखा समाहित होती है। इसीलिये एक समय में आन्दोलनों की गति काफी तीव्र होती है। पुनर्जागरण आन्दोलन में सर्वप्रथम पुरुषों ने

9. वी.एन.सिंह, भारतीय सामाजिक चिन्तन, नवम संस्करण, पृष्ठ 43-44.

Scanned with CamScanner